आप एक बार अपनी आँख बन्द करके देखिये,
भगवान् हमारे सिर पर अपना चरण
रख करके, अपना मान करके, इस देह को,
इन्द्रियों को, सूक्ष्म शरीर को, कारण-शरीर को,
विश्व को, तैजस को, प्राज्ञ को
आत्मसात् करते जा रहे हैं।
अब यह न तो मेरा है; न तो यह मैं हूँ।
इसका नाम है 'बलिदान'।

जो सर्वस्व त्याग नहीं करेगा, वह
बलिदान नहीं करेगा। यह 'सर्वमेध याग'
होता है, जो ठीक-ठीक समझ में आ जाये
तो आत्मज्ञान अपनी मुट्ठी में है।

अखण्ड चिन्तन

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

अखण्ड चिन्तन

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलन
आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर
वृन्दावन

आराधन महोत्सव के पावन पर्व पर

त्वदीय वस्तु गोविन्द !

तुभ्यमेव समर्पयेत् ।

....

परम पूज्य महाराजश्री के एक कृपा–पात्र
सेठी एण्ड सन्स, 44 यू.बी., जवाहर नगर
कमला नगर, दिल्ली के
सौजन्य से

आनन्द प्रस्तुति ऑडियो विजुअल सेंटर
आनन्द वृन्दावन, वृन्दावन
द्वारा
वितरणार्थ प्रकाशित

मुद्रण–संयोजन
श्रीहरिनाम प्रेस, लोई बाजार, वृन्दावन–281121
दूरध्वनि : 7500987654

मङ्गलाचरण

अशेषकरणाधिपैर्गत – विशेषमाराधितो
दशासु तिसृषु स्थितो निखिल– भोगवान्निर्मलः।
तुरीय इति संज्ञया व्यवहृतस्त्रयीमस्तके–
ष्वहं हरिरबाधितो जयति कल्पनावर्जितः।।

'अशेष अन्तरङ्ग–बहिरङ्ग करणों के स्वामी निर्विशेष रूपसे आराधना कर रहे हैं। तीनों अवस्थाओं में स्थिति है। निखिल भोगवान् होने पर भी निर्मलता एकरस है। वेद के शिरोभाग उपनिषद् में तुरीय नामसे व्यवहार हो रहा है। मैं कल्पनावर्जित अबाधित हरि हूँ। जय हो, जय हो।।

'स्वस्त्ययन'

ऊँ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।
ऊँ शान्तिः। शान्तिः।। शान्तिः।।।

ब्रह्म को सुराग बतानेके लिए, ब्रह्मकी चुगली करनेके लिए कि ब्रह्मको कहाँ ढूँढते हो, ब्रह्म तो यह छिपा है– इस प्रकार श्रुति ब्रह्मकी चुगली करती है। हमलोग बचपन में एक खेल खेलते थे 'आँखमिचौनी'। एक लड़के की आँख बंद कर लेते थे और सब छिप जाते थे। जो कोई खेलमें शामिल नहीं होता, देखता रहता कि कौन लड़का कहाँ छिपा है, कौन लड़का कहाँ छिपा है, वह झट से इशारा कर देता अंगुली से कि वहाँ है। उसने अंगुली से चुगली की, आँख से चुगली की कि वहाँ चले जाओ। झट जाकर ढूँढ लेते थे। तो यह श्रुति इसी प्रकार संकेत–वृत्तिसे, इशारे से चुगली करती है कि ब्रह्म को तुम ढूँढने के लिए उधर जा रहे हो ? वह तो तुम्हारे भीतर ही छिप रहा है।

मुझ को क्या तू ढूँढे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।

तो श्रुति वही सुराग देती है कि तुम्हारे दिलमें ईश्वर छिपा हुआ है। उसके प्राकट्य के लिए श्रुति का निर्देश है,

गुरु और शिष्य को, आचार्य और जिज्ञासुको परस्पर मिलकर काम करना चाहिए। **'सह नाववतु'**। हम एक दूसरे की रक्षा करें। कैसे ? हम आपको मोटा–मोटी बात बतावें ! जैसे हम आपका अज्ञान मिटाने के लिए उपनिषद् का व्याख्यान कर रहे हैं। तो आप हमारे रहनेकी व्यवस्था करिए, हमारे खानेकी व्यवस्था करें, हमारे कपड़े की व्यवस्था करें। **'सह नाववतु'**– आप हमारी रक्षा करें और हम आपकी रक्षा करें– यह इसका सीधा अर्थ है। इसमें कुछ टेढ़ा–मेढ़ी, कुछ खींचा–खींची नहीं है। हम तुम्हारा अज्ञान मिटा रहे हैं, तुम हमारी भूख मिटाओ ! अब हमको दूकान भी करनी पड़े, नौकरी भी करनी पड़े, खानेके लिए रोटी भी ढूँढनी पड़े और आकर तुमको वेदान्त सुना जायें ! नहीं, **'सह नाववतु'**।

'सह नौ भुनक्तु'। एक दूसरे को कोई डंडा मारने आवे तो हम उसको समझावें कि नहीं–नहीं, डंडा नहीं मारना चाहिए। हमारे चेले हों तो रोक लें, डंडा न मारने दें। **'भुनक्तु'** का अर्थ है रक्षा। अच्छा, तुम समझनेकी कोशिश करो और हम समझाने की कोशिश करें। तुम समझनेकी कोशिश नहीं करोगे तो हमारा समझाना बेकार जाएगा और हम कहें कि बाबा, यह चाहे समझें और चाहे न समझें, हम तो बरसते जायें। तो उससे भी काम नहीं चलेगा। **'सह वीर्यं करवावहै'**– हम दोनों अपना पराक्रम, अपना बल,वीर्य साथ–साथ लगावें। दोनों ओर से कोशिश होवे। ताली दोनों हाथ से बजती है। तुम्हारे मनमें समझनेकी इच्छा न हो तो चाहे जज हो, चाहे बैरिस्टर हो, चाहे डॉक्टर हो, जिज्ञासा नहीं होगी तो तुम्हारी पंडिताई के कारण यह समझने में नहीं आवेगा। और, हमारी अगर समझानेकी इच्छा न हो तो हम ऐसे शब्द का प्रयोग कर देंगे– अवच्छेद का अवच्छिन्न, उपाधि– उपहित– तो एक मील लम्बा विशेषण–विशिष्ट, ऐसी भाषा बोलेंगे कि तुम जिन्दगी भर सुनते रह जाओ, एक कण समझमें नहीं आवेगा। तो समझानेवाला सचमुच समझाना चाहता हो और समझने वाला सचमुच समझनेका प्रयास करता हो– **'सह वीर्यं करवावहै'। 'तेजस्वि नावधीतमस्तु'– नौ आवयोः अधीतं तेजस्वि अस्तु'**– हम लोग जो श्रवण करते हैं, वह तेजस्वी हो। जैसे सूर्य की रोशनी में सब दीखने लगता है, जैसे आग की लपट में सब जल जाता है, जैसे चन्द्रमा की रोशनीमें आह्लाद मिलता है, इसी प्रकार यह हमारा समझना और समझाना तेजस्वी होवे। प्रतिबन्ध की निवृत्ति करनेमें समर्थ होवे। **'मा विद्विषावहै'**–

हम कभी द्वेष न करें। नहीं महाराज, तुम ठीक नहीं समझा सके। यह बात ऐसी है'। नहीं चेलाजी, तुम समझ नहीं सके।' इस प्रकार दो–दो, चार–चार खटपट हुई और चेला का सीखना बंद हो गया और गुरुजीका सिखाना बंद हो गया। तो परस्पर कभी द्वेष नहीं होवे। **'मा विद्विषावहै'**। इससे क्या होता है ?

ऊँ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

इसका जप करने से, प्रारंभ में इसका उच्चारण करनेसे द्वेषादि जो मनमें विघ्न हैं, उनका निवारण हो जाता है।

देखो, 'विघ्न' माने जो मार डाले। जैसे शत्रुघ्न में 'घ्न' होता है, शत्रु को मारे सो 'शत्रुघ्न'; वैसे विशेषरूपसे मारे सो 'विघ्न'। पता नहीं चलता, ऐसा जहर आता है, ऐसा जहर आता है मनमें कि अपना लक्ष्य भूल जाता है, अपना साधन भूल जाता है, अपना आपा भूल जाता है, गुरु भूल जाता है, ईश्वर भूल जाता है। ये हृदयमें विघ्न स्थित होते हैं। तो उनको दूर करनेके लिए शांति मंत्र का उच्चारण करना चाहिए।

,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,

'अन्त ःकरण–शुद्धि'

वासना के अनुसार कर्म करनेसे भोग की प्राप्ति होती है। यदि वासनाके अनुसार निषिद्धकर्म करेंगे माने जो शास्त्रमें मना है, वह कर्म करेंगे तो आगे दुःख मिलेगा। उसको संस्कृतमें 'प्रत्यवाय' बोलते हैं। निषिद्ध–कर्मसे प्रत्यवाय की उत्पत्ति होती है। 'प्रति' माने उलटा और 'अव' माने अधः नीचे और 'अयन' माने गति अर्थात् जिस कर्म के करनेसे अपने लक्ष्यसे विपरीत अधःपतन होवे, उसका नाम 'प्रत्यवाय' है। पाप–पुण्य और कुछ नहीं है ! जो तुम्हारे लिए मना है, उसका नाम 'पाप' है और जो तुम्हारे करनेके लिए विहित है, उसका नाम 'पुण्य' है। तो यदि मना किया गया काम करोगे तो तुम्हारे मनमें कुछ खटक जाएगा। तो उस समय भले मजा आ जाए, लेकिन बादमें उससे दुःख मिलेगा। तो जो तुम सुख चाहते हो, उससे उलटा दुःख मिलेगा और चाहते हो उन्नति और हो जाती है अवनति। तो उसको अधःपतनीय कर्म बोलते हैं, जिस काम को करनेसे जहाँ हम पहुँचना चाहते हैं, उससे उलटे पहुँच जायें।

भरतपुरसे ऊँटगाड़ी में गाड़ीवान मथुरा की ओर आ रहा था। रास्ते में गाड़ीवान सो गया। तो एक आदमी ने ऊँट की नकेल पकड़ी और धीरे,धीरे घुमाकर उसका मुँह भरतपुर की ओर कर दिया। अब ऊँट तो चलता रहा। वह जाना चाहता था मथुरा और फिर पहुँच गया भरतपुर। तो हम पाना चाहते हैं सुख, मिलेगा दुःख; यदि हम निषिद्धकर्म करेंगे। परन्तु, वासना की पूर्ति के लिए यदि हम विहित कर्म करेंगे, काम्य–कर्म करेंगे, तो जैसी हमारी कामना होगी, उस कामना की प्राप्ति होगी; परंतु वह नश्वर होगी। हम स्वर्ग चाहें तो स्वर्ग मिलेगा। हम राज्य चाहें तो राज्य मिलेगा। हम भोग चाहें तो भोग मिलेगा। उसमें दुःख तो नहीं है। परंतु, नाश उसका जरूर होगा। क्योंकि ढेला जितनी जोर से फेंका जाता है, उतनी दूर जाकर फिर गिर पड़ता है। हमारे कर्म में जितना वेग होगा, जितनी शक्ति होगी, उसके अनुसार फल मिलेगा और उसका नाश हो जाएगा। और, यदि हम निषिद्ध–कर्म न करें, काम्य–कर्म न करें और विहित–कर्म करें! 'विहित–कर्म' माने जो अपने लिए करनेको कहा हुआ है अर्थात् 'कर्त्तव्य–कर्म' करें तो क्या होगा ? अंतःकरण–शुद्ध हो जाएगा। अंतःकरण–शुद्धि तब होती है, जब हम बाहर की कोई चीज– इस लोक या परलोक की– नहीं चाहते हैं तब जहाँ वह धर्म उत्पन्न होता है, वहीं अपना काम करता है और अंतःकरण को शुद्ध कर देता है।

अंतःकरण के शुद्ध होनेका अर्थ यह होता है कि उसमें शुद्ध चिन्तन होने लगे। बुराईका चिन्तन न हो। यदि अंतःकरण शुद्धका चिन्तन करता है तो शुद्ध और यदि बुराई का चिन्तन करता है तो बुरा है। आप पहचान लो कि आपका मन किसीकी गलती के साथ ज्यादा चिपकता है– कल भी उसी गलतीका ख्याल आया, आज भी उसी गलतीका ख्याल आया। मन कहाँ चिपकता है ? शास्त्र में लिखा है कि बुड्‌ढा आदमी जो होता है, उसकी बुढ़ियासे भी आसक्ति हो जाती है। कुत्ते की आसक्ति कुतिया से होती है। जैसा तुम्हारा मन मैला होगा, वैसी मैली चीज से चिपकने में उसको कोई आपत्ति नहीं होगी। अगर कथरी ओढ़ने की गंदी होगी तो उसमें मैला, कुचैला, फटा कपड़ा भी जुड़ जाएगा।

'जीर्णोऽपि पटः जीर्णया कंथयाः संयुज्यते'।

ऐसे शास्त्र में लिखा है।

तो हमारा मन अगर किसी की या अपनी भी बुराई का चिन्तन छोड़ने के लिए करता है, तब तो याद आना भी अच्छा है। लेकिन, अगर छोड़ने के लिए नहीं, आदतवश उस बुराई को सोच–सोचकर कि हमने यह चोरी की, हमने यह डाका मारा ऐसा सोचकर ही रह जाते हैं तो गलत है। हमने कई लम्पटोंके मुँह से सुना है– शामको जब ठंडे के दिनों में आग जलाकर बैठते हैं, तब बदमाश लोग अपनी–अपनी बदमाशी का वर्णन करते हैं कि हमने यह मजा लिया है। तो अपनी बदमाशीका चिन्तन जब मजा लेने के लिए करते हैं तो

बदमाशी छूटती नहीं है, बढ़ती है।

तो नारायण, दूसरे की बुराई का तो ख्याल करना ही नहीं और अपनी बुराई का ख्याल भी मजा लेने के लिए नहीं, छोड़नेके लिए करना चाहिए और ख्याल नहीं करना चाहिए, छोड़ देना चाहिए। ख्याल करनेसे तो और बढ़ती–ही–बढ़ती है। अपनी बुराई का ख्याल करके रोओगे तो क्या होगा ? निश्चय करो कि आज के बाद नहीं करेंगे।

तो निष्काम–कर्मसे अंतःकरण की शुद्धि होती है।

अब दूसरी बात देखो। वासना के अनुसार चिंतन करना। तो यदि शास्त्रोक्त–चिंतन करोगे ईश्वरका–रामका,कृष्णका, संतका, सद्गुरूका, तो क्या होगा ? देखो, संतका चिन्तन करना भी शास्त्र–विहित है। अपने मनको वीतराग के चिंतनमें लगाओ तो तुम्हारे मनमें वीतरागता आवेगी और नहीं तो राम, कृष्ण, शिव, विष्णु, देवी– ये सब एक ही वस्तु के तरह–तरह के नाम हैं; कलई अलग–अलग है, चीज एक ही है भला ! कोई सांवरा है, कोई गोरा है; कोई औरत है, कोई मर्द है। लेकिन चीज सबमें एक ही है। तो ईश्वर–बुद्धिसे चिंतन करो तो तुम्हारी उपासना हो जायेगी। तो वासना की जगह पर उपासना आकर बैठ जाएगी और उससे तुम जिसका चिंतन करते हो, उस देवता के लोक की, उस रूप की प्राप्ति होगी। उससे प्रेम होगा। और, यदि मनको बिलकुल निष्क्रिय, निर्विक्षेप कर दिया जाए योगाभ्यास से तो समाधि लग जाएगी।

तो नारायण, धर्म–सिद्धान्त, उपासना–सिद्धान्त, योग–सिद्धान्त से अंतःकरण की शुद्धि होने के बाद तब तत्त्वज्ञान हृदयंगम होता है।

,,,

दु:खी कौन ?

एक बात आपको सुनावें ! दु:ख अभी तक किसी ने देखा ही नहीं है। रोते हैं हम दु:ख का नाम लेकर। मकान में आग लगनेका नाम दु:ख नहीं है। पैसा जानेका का नाम दु:ख नहीं है। किसी के वियोगका नाम दु:ख नहीं है। शरीरमें रोग होनेका नाम दु:ख नहीं है। दु:ख एक मानसिक वृत्ति है। दु:ख को आपने देखा है ? कितने फुटका दु:ख होता है ? लाल है कि काला है कि नीला है कि पीला है ? आँख से कभी आपने दु:ख को देखा है ? नापा है दु:खको ? दु:ख का वजन कितना होता है, मालूम है ? बच्चे के लिए दुअन्नी खोनेका जितना वजन होता है, जुआरी के लिए लाख रूपए खोनेका उतना वजन नहीं होता।

तो दु:ख जो है, वह बाहर नहीं होता। दु:ख अपने मनमें होता है। अच्छा, मनमें होता है, सो भी नहीं। हम अपने को दु:खी मान लेते हैं। बिना देखे कौआ कान ले गया। लोगों ने हमारे मनमें भर दिया, ठूँस दिया कि ऐसा होने से दु:ख होता है, ऐसा होने से दु:ख होता है। किसीने गाली दे दी तो दु:ख हो गया। वह गाली सच्ची है कि झूठी, इस पर आपने विचार किया है ? किसीने मां–बहन की गाली दी। तो हमारी मां–बहनसे उसका कोई रिश्ता है ? उसकी गाली बिलकुल झूठी है कि नहीं ? तो तुमको हँसी आनी चाहिए न कि क्या झूठ बकता है। कितना मिथ्यावादी है !!

तो यह जितना दु:ख संसार में होता है, वह अपने मन की खराबी से होता है, मन की गलती से होता है। इसके सिवाय दु:खका और कोई कारण नहीं है। लेकिन आदमी अपने में सुखका अभाव देखता है। हाय–हाय, हमको सुख नहीं है ! पैसा मिलेगा, तब सुखी होंगे ! मकान मिलेगा, तब सुखी होंगे ! उस लड़की से ब्याह होगा, तब सुखी होंगे। हम इतने बड़े मुश्टन्डे हो जायेंगे, तब सुखी होंगे। जैसे हैं, उसमें सुखका अनुभव नहीं करते, जैसे नहीं हैं, उसका अनुभव करके अपने कमीका, गरीबीका, हीनताका, दु:खका अनुभव करते हैं। पच्चीस हजारकी मोटरमें चलते हैं और लाख रूपए वाली मोटरके बिना दु:खी होते रहते हैं। पच्चीस हजार का तो उनको सुख ही नहीं है कोई ! और, लाख रूपए वाली मोटरमें चलते हैं तो होता है कि भई, यह इस देशकी नहीं चाहिए, उस देशकी चाहिए।

तो नारायण, यह दु:खी कौन है ? जो अपनेमें अभावका अनुभव करता है, वही दु:खी होता है। पूर्णताके अनुभव का ही नाम 'सुख' है। आप अपने को भरपूर समझिए न। हम आपकी हीनताका भाव, गरीबीका भाव, अभाव, दु:ख मिटाना चाहते हैं। आपको अपनेमें अगर कमी नहीं है तो आप कभी दु:खी नहीं हो सकते। किसका शोक है ? किसका भय है ? किसका मोह है ? जो बीत गया, उसके शोकसे आप दु:खी हैं। आप मोह से दु:खी हैं कि हाय–हाय, छूट न जाए। आप भय से दु:खी हैं कि अरे, कहीं ऐसा न हो जाए। रोग से भी आदमी को उतना दु:ख नहीं होता, जितना ये डॉक्टर, वैद्य लोग डरा देते हैं।

हम एक अपनी बात सुनाते हैं। एक दिन एक सेठ हमारे पास आकर बैठे हुए थे। बदकिस्मती से समझो उनके सामने हमको छींक आ गयी। बोले कि स्वामी जी, आपको तो जुकाम हो रहा है। फिर उन्होंने कहा कि मैं अभी डॉक्टरको फोन करता हूँ। तो डॉक्टर को कर दिया फोन और उस डॉक्टर ने कहा कि तुम अभी स्वामी जी को हमारे पास ले आओ। मैं खाली हूँ। अच्छा, जब हम पहुँचे तो वह खाली नहीं था, ऑपरेशन कर रहा था। तो वह मुँह पर कपड़ा बाँधे और हाथ में दास्ताने पहने–पहने आया सामने और उसने हमारी नाक देखी। छींक एक ही आयी थी। उसने कहा कि स्वामीजी, आपकी नाकका जो छेद है, वह छोटा हो गया है। तो आइए, मैं अभी नाक काटकर जरा–सा बड़ा कर देता हूँ उसको। एक कमरा दिखा दिया कि इसमें आप रहिए, इसमें से सामने बड़ा मैदान दिखेगा। आपके भगत लोग आवेंगे, यहाँ बोलनेमें कोई हानि नहीं होगी। आप उपदेश करना और यहीं रहना। तो मैंने कहा कि भाई, हम जरा रतनसीभाई से पूछें। नाक कटवानेकी

बात है। अच्छा, उसने कहा कि आज नहीं, परसों सही। अब दूसरे डॉक्टर के पास वे लोग ले गए और उसने कहा कि नहीं, नाक–वाक काटनेकी कोई बात नहीं है। यदि कोई छेद छोटा होगा तो हम बिजली से उसको जलाकर ठीक कर देंगे। पर, अभी कोई जरूरत नहीं है। इस बातको आठ–दस–बरस हो गए भला! नाक हमारी ज्यों–की–त्यों है।

तो तकलीफ काहे की हुई ? जो उस डॉक्टर ने डराया न कि नाक काटनी पड़ेगी, सो नाक काटनेका भय हो गया। नहीं तो नाक खराब हो जाएगी और भीतर यह–यह हो जाएगा जुकाम बिगड़ जाएगा टी.बी. हो जाएगी। लो, टी.बी. तक पहुँचा देते हैं और छींक एक ही। तो यह जो आगे के लिए भय होता है, यह दुःखी कर देता है।

अब देखो, मरनेवाले तो सब हैं। आप भय से अभी से रोना शुरू कर दो! तो यह मनमें आगे के लिए भय उत्पन्न करना, मनमें पिछली बातोंके लिए शोक उत्पन्न करना मूर्खता है !

एक आदमी के घरमें कोई मर गया था। अब वह बेचारा तो अकेला ही था। अब जो आवे, सो कहे कि हाय–हाय, कितने अच्छे आदमी थे, मर गए। उसके साथ पांच मिनट बेचारा रो ले। फिर वह जाए, दूसरा आ जाए। तो उसके साथ पांच मिनट रो ले। अब दिन भरमें पन्द्रह,बीस आदमी आए। तो वे लोग तो पांच मिनट रूलाकर चले जायें और रोने वाले का एक–दो घंटा हो गया। उसको रोना–ही–रोना पड़े। तो ये मातमपुर्सी करनेवाले लोग बीती बातों को याद दिला–दिलाकर– हायरे, ऐसा हो गया, हाय रे, ऐसा हो गया–ये दुःखी करते रहते हैं।

आप एक तो दुःखी हैं और उस पर हम आपको यह बतावेंगे कि बेवकूफी से दुःखी हैं, तो आपको और बुरा लगेगा। परंतु, साँची बात यही है कि जो भी दुःखी होता है, केवल नासमझी से दुःखी होता है। नासमझी के सिवाय दुःखका और कोई उपादान नहीं है। जिस मसाले में दुःख बनता है न, उस मसाले का नाम है 'नासमझी'। उस नासमझी को मिटाने के लिए ज्ञानकी जरूरत पड़ती है। समाधिमें आप थोड़ी देरके लिए सो जाओगे। तो जैसे डॉक्टर लोग दवा देकर सुला देते हैं, वैसे समाधिमें थोड़ी देर सो जाओगे। और, जैसे दुःखी आदमी थोड़ी देर मनोरंजन करनेके लिए कहीं चला जाए, तो जितनी देर वह सिनेमा हॉल में बैठा रहेगा, मन रम जाएगा और दुःख भूल जाएगा। तो उपासना से जो दुःख दूर होता है वह मनोरंजनके समान दुःख दूर होता है और योग से जो दुःख दूर होता है, वह नींद के समान दुःख दूर हो जाता है। और, धर्म करते समय, यज्ञ करते समय जो दुःख दूर हो जाता है, वह कैसा है ? कोई दुःखी हो न, तो उसको तुरंत काममें लगाओ।

हमको बड़ा स्पष्ट अनुभव हुआ। हमारे पितामह की मृत्यु हुई, तो मैं अठारह–उन्नीस बरस का था। घरमें दूसरा कोई नहीं, मैं ही था। अब महाराज, उनकी तो लाश पड़ी थी दरवाजे पर। बाहर निकाल कर रखी थी। और, मैं बैठकर व्यवस्था कर रहा हूँ कि लोगों को सूचना दो, लकड़ी मंगाओ, भंडारा करनेका यह बन्दोबस्त करो। अब इतने मेहमान आवेंगे, उनके लिए सब बन्दोबस्त करो। काम में लग गए तो उनकी लाश पड़ी, यह बात भी भूल गई।

तो जब आदमी धर्म के काममें लग जाता है तो उसको बाहर की जो फिक्र है, वह भूल जाती है। तो काममें लगकर फिक्र छोड़ना, यह कर्म है और मनोरंजन–गृह में जाकर दुःख को भूलना, यह उपासना है और नींद में जाकर दुःख को भूल जाना, इसका नाम समाधि है और ऐसा ज्ञान हो कि संसारका व्यवहार ज्यों–का–त्यों करते रहें–चाहे कोई मरे, चाहे जरे। पहली चोट बड़ी जबरदस्त लगती है।

हमारे बचपन में गांवमें एक साल प्लेगका दौरा आया था। तो गांव में जब एक आदमी मरा तो लोग बड़े दुःखी हुए। ले गए गंगा जी। पच्चीस–पचास आदमी साथ गए। जब लौट कर आए, तब तक दूसरा मरा पड़ा था। तो उसके साथ पच्चीस–पचास नहीं थोड़े लोग गए। अब दिन भर में पांच–छः आदमी मरे और दूसरे दिन फिर पांच–छः मरे और तीसरे दिन फिर पांच–छः मरे। अब लोग पहले खा लें, तब लाश को ले

जायें। कोई रोवे नहीं।

तो पहली चोट बड़ी लगती है और जब दु:ख आने लगता है, बार–बार सहने की आदत पड़ जाती है। जिसके घरमें गाली देकर बोलने का रिवाज है, वहाँ गाली सुनकर किसी को दु:ख नहीं होता है। हमने देखा है एक घरमें दिन भर गाली–गलौच होती रहती है और हंसते, खाते रहते हैं, बोलते रहते हैं। उनको कोई दु:ख ही नहीं होता।

सौ–सौ धक्के खाएँ, तमाशा घुसके देखें!

तो नारायण, यदि आप सारे दु:खों से छूटना चाहते हैं तो एक ऐसा ज्ञान आपको चाहिए, जिसमें जन्मना और मरना बराबर हो जाए, जिसमें नरक और स्वर्ग बराबर हो जाए, जिसमें भाव और अभाव, मिलना और बिछुड़ना बराबर हो जाए। ऐसा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, जिसमें ब्रह्म और जगत् एक हो जाए। तो चाहे समाधिमें रहो, चाहे विक्षेपमें रहो, आप दु:ख से मुक्त हो जाओगे। इसका नाम जानकारी है। ज्ञान है। यह आंख मूंदनेका नाम नहीं है, हाथ जोड़नेका नाम नहीं है, होम करनेका नाम नहीं है। इसका नाम ज्ञान है, ब्रह्मविद्या है, जानकारी है, समझदारी है। यह कोई दुनियादारी की चीज नहीं है। इस बातको आप समझ लें तो सारे दु:खों से मुक्ति है। इस जन्मके नहीं, दूसरे जन्मके दु:खों से भी मुक्ति हो जाएगी।

,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,

‘द्रष्टा’

वेदांत–सिद्धान्तमें द्रष्टा बनना नहीं माना जाता। आत्माका स्वरूप ही द्रष्टा है, ऐसा मानते हैं। इसलिए जो लोग थोड़ी देरके लिए द्रष्टा बन जाते हैं, वे तो असलमें मनसे ही द्रष्टा बनते हैं। सो थोड़ी देरके बाद उनका द्रष्टा–पना टूट जाता है। और, जो वस्तुतः विवेक के द्वारा प्रकृति से अपने विविक्त स्वरूप को अनुभव कर लेते हैं, उनके लिए फिर थोड़ी देरका प्रश्न नहीं रहता। वे तो नित्य, निरन्तर द्रष्टा–ही–द्रष्टा हैं। मनसे भावना किया हुआ जो द्रष्टा–पन है, वह ऐसा ही है जैसे शालग्राम में नारायण–बुद्धि। देखने में तो गोल–मटोल गण्डकी–शिला दिखती है और हम भाव करते हैं कि इसमें चतुर्भुज नारायण हैं। इसी प्रकार, हम मनसे अपने अहमर्थ का चिन्तन करके ख्याल बनाते हैं कि हम द्रष्टा हैं। इसीलिये वे दृश्य के दोषसे विनिर्मुक्त नहीं होते। फिर उनको राग–द्वेषादि की प्राप्ति हो जाती है। शास्त्रोक्त रीतिसे द्रष्टा और दृश्य का विवेक करना चाहिये। यह जो आँख बंद करके सोचते हैं कि मैं द्रष्टा हो गया, वे असलमें कर्ता हैं और वे अपने अशुद्ध अहंकार को ही द्रष्टा मानते हैं। असलमें उनको द्रष्टा का ठीक–ठीक ख्याल नहीं है । आजकल द्रष्टा की जो साधना बताई जाती है, वह भी एक विश्वास की ही साधना है। एक विश्वास से विचलित हो गये। माने दृश्य में भगवद्–भाव नहीं रहा। तो अपने में द्रष्टा का भाव किया। द्रष्टा का भाव असलमें करनेका नहीं है। प्रकृति और पुरुष का विवेक करके, दृग्–दृश्य विवेक करके अपने आपका जो वस्तुतः पृथक् स्वरूप है, जिसमें स्थित होना भी नहीं पड़ता। जो अपना आपा ही है–ऐसे ‘मैं’ का जो विवेक है, उसको द्रष्टाका विवेक बोलते हैं। योगमें वृत्ति का निरोध होने पर होता है और सांख्यमें केवल विवेक से ही हो जाता है और वेदांत के दृष्टिकोणसे त्वं–पद के लक्ष्यार्थ का विवेक द्रष्टा है और तत्–पद के लक्ष्यार्थ का विवेक ब्रह्म है तथा दोनों की एकता तत्त्वमस्यादि महावाक्य से बोधित होती है।

हमको महेशयोगी ने बताया कि स्वामी जी, विदेशोंमें लोग यह तो जानते नहीं हैं कि अध्यात्म क्या होता है, अधिदैव क्या होता है, अधिभूत क्या होता है ? वहाँ तो बिलकुल बंजर खेत पड़ा है। इसलिए यहाँ का कोई भी चला जाये और यहाँ की छोटी–से–छोटी बात जब उनको बताते हैं तो उनको बहुत बड़ी मालूम पड़ती है।

नारायण, जो लोग हमारी आध्यात्मिक संस्कृति से परिचित हैं, उनके लिए इसकी बड़ी गंभीरता है। हाँ, थोड़ी देर के लिए भी आप यदि द्रष्टा बन जायें, माने आपका द्रष्टा–पन यदि कृत्रिम भी होवे, बनावटी भी होवे, तब भी मनके दुःखों से आप बहुत कुछ बच सकते हैं। क्योंकि, द्रष्टा होना माने गवाह होना। मुद्दई–मुद्दालय से अलग हो जाना। दो आदमी लड़ते हैं, लड़ने दो। तुम द्रष्टा हो। और, यदि दोनों में से किसीका पक्षपात करोगे तो तुम अभियुक्त हो जाओगे, द्रष्टा नहीं रहोगे। तो थोड़ी देर के लिये भी यदि कोई द्रष्टा–पनका अभ्यास करे तो उसको दुःखसे, राग–द्वेषसे मुक्त होने में सहायता मिलती है। लेकिन इसमें यदि कोई कहे कि साकार उपासना झूठी है, राम, कृष्ण झूठे हैं, शालग्राम में नारायण की भावना झूठी है और ‘मैं’ में द्रष्टा–पन की भावना सच्ची है, तो यह बात बिलकुल गलत है। क्योंकि, दोनों विश्वासमूलक भावना हैं। न वहाँ अभी नारायण का अनुभव है, न यहाँ द्रष्टा का अनुभव है। अनुभव तो बादमें ही होता है।

,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,,

बलिदान और आत्मज्ञान

संस्कृत भाषामें 'बलिदान शब्द बड़े मधुर अर्थमें प्रयुक्त हुआ है। इसका अर्थ बहुत मीठा है। बलिदान और मीठा ? आप एकबार 'बलिदान' शब्दके इतिहासपर दृष्टि डालें।

एक 'बलि' नामके राजा हुए। वे प्रह्लादके पौत्र और विरोचनके पुत्र थे। उनकी वंश परम्परामें प्रह्लादसे विरोचन, विरोचनसे बलि और बलिसे बाणासुर हुए। बलिको उत्तराधिकारमें सम्पूर्ण पृथिवीका राज्य मिला। हिरण्यकशिपुके साथ जो देवता लोग कभी–कभी विद्रोह भी करते थे; किन्तु जबसे प्रह्लादका राज्य हो गया तबसे तो देवता लोग भी प्रह्लादका बड़ा आदर करते थे और हाथ जोड़ते थे। प्रह्लाद मरे तो थे नहीं, जिन्दा थे।

विरोचन भी कम प्रभावशाली नहीं था। उसने भी प्रजापतिके पास जाकर ज्ञान पानेकी चेष्टा की थी, उसने भी ब्रह्मचर्य पालन किया था और उसने भी एक बार अपने शत्रुको आयु दान कर दिया था।

विरोचनके जीवनमें यह प्रसंग आता है कि जब ब्राह्मणका वेश धारण करके देवता लोग आये कि 'हम तुमसे दान माँगते हैं, तो विरोचनने अपनी आयुका दान ब्राह्मणोंको कर दिया। इतना प्रभावशाली था विरोचन। उसके पुत्र हुए बलि।बलिने त्रिलोकी पर आधिपत्य कर लिया और मैं–मेरा करने लगा कि 'यह संसार मेरा है' और 'मैं इसका मालिक हूँ।' बलि ऐसा अभिमान कर बैठा।

अब बलि यह चाहते थे कि हमको 'इन्द्र'की पदवी प्राप्त हो। वे युद्धसे भी इन्द्रकी पदवी प्राप्त कर सकते थे। वे चाहते, तो जीत लेते। किन्तु युद्धसे पदवी प्राप्त कर लेनेमें उसपर हमेशा खतरा ही बना रहता है। दूसरे पक्षके लोग भी हमेशा इसी तैयारीमें रहते हैं कि कब मौका मिले और युद्ध करें और छीन लें! परन्तु धर्मसे जो वस्तु प्राप्त की जाती है, वह हमेशाके लिए मिल जाती है। तो बलिने यज्ञ किये। एक यज्ञ, दो यज्ञ, तीन यज्ञ! बड़ा भारी यज्ञ !! महाराष्ट्रके पास ही नर्मदाके तटपर 'भृगुकच्छ' नामका स्थल है, जिसको आजकल 'भरुँच' बोलते हैं। पूर्वकालमें शास्त्रमें 'भृगुकच्छ' नाम है। यही वह भूमि थी।

अब देवतालोग घबड़ाये कि यदि यज्ञ पूरे हो जायेंगे, तो हमेशाके लिए सप्तद्वीपवती पृथिवी ही नहीं, त्रिलोकीका वह राजा हो जायेगा ! सब देवता ब्रह्माके पास गये। ब्रह्मा देवताओंको लेकर भगवान्‌की शरणमें गये। अन्तमें भगवान्‌ने कहा– 'भाई, हम भी बलिको मार नहीं सकते। यदि बलि देवताओंपर चढ़ाई करते, तो देवता हमारे भक्त हैं, हम हाथमें चक्र लेकर पहुँच जाते और बलिको मारते। जैसे हर बार देवासुर संग्राममें देवताओंकी सहायता करता रहा हूँ, वैसे इस समय भी देवताओंकी सहायता करता और बलिको मार डालता।' लेकिन अब तो **'पृथिचरन् प्रभुभिर्न चाल्यः।'**

श्रीमद्भागवतमें कहा है, 'जो रास्तेसे चलता है, उसको देवता एवं ईश्वर भी मार्गपरसे हटा नहीं सकते, क्योंकि वह वैदिक मर्यादाके अनुसार चल रहा है।

भगवान्‌ने कहा, 'अच्छा भाई, मारनेसे तो काम नहीं चलेगा, माँगना पड़ेगा। जो माँगता है सो छोटा होता है और जो देता है सो बड़ा होता है। माँगनेवालेको हमेशा ही छोटा होना पड़ता है।

भगवान्‌ने कहा, 'हम ब्रह्मचारी ब्राह्मणका वेश धारण करते हैं और उसका तो माँगनेका अधिकार होता ही है। यज्ञभूमिमें चलेंगे और बलिसे दान मागेंगे। अब माँगनेके लिए भी पक्षपात करना पड़ेगा। जबतक ईश्वर रहेंगे तबतक तो पक्षपात कर नहीं सकेंगे। पक्षपात करनेके लिए देवता बनना पड़ेगा।' जिस माँके बेटे सूर्य, इन्द्र और देवता हैं, उस अदितिके पेटमें भगवान् आये और इन्द्रके छोटे भाई बने ! वामन बनकर वे बलिके यज्ञमें गये।

हमारे वेदान्तियोंमें जब कभी लोग आत्मा और अनात्माका विवेक करते हैं तो कहते हैं कि ' यह संसार तो प्रकृतिका कार्य है, अनात्मा है, उसे छोड़ दो।' कोई कहते हैं कि 'यह मायाका कार्य है, दृश्य है, इसलिए

इसका परित्याग कर दो।' कोई कहते हैं कि 'यह दृश्य है इसलिए विकारी है, यह तो हड्डी–मांस–चामका पुतला है शरीर! और नाशवान् है संसार !

संसारमें चार दोष हैं– १. इन्द्रियोंमें विषयोंको भोगनेकी शक्ति कम है। २.भोगके ये विषय अनित्य हैं। ३. मन बहुत दिनों तक किसी एक चीजसे प्यार नहीं कर सकता। ४. सुषुप्तिमें न विषय रहते हैं, न इन्द्रियाँ रहती हैं, न मन रहता है; सबका लय हो जाता है।

ऐसी स्थितिमें संसारमें प्यार करने योग्य कोई वस्तु नहीं है, इसको छोड़ दो। आत्मा–अनात्मा इस ढंगसे विवेक करके छोड़ देते हैं कि 'मैं आत्मा हूँ, अनात्माके साथ आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि सम्बन्ध ा एकतरफा माना जाता है। आत्मा तो सम्बन्ध मान ले किसीसे, किन्तु अनात्मा नामकी कोई चीज सम्बन्ध मानती नहीं, वह तो जड़ है। इसलिए चेतन आत्मा ही फँसता हैं। जो जड़ है वह किसीसे नहीं फँसता। इस तरह चेतन आत्मा संसारमें फँस–फँस करके दु:ख भोगता रहता है।'

इस तरह वेदान्ती लोग अपनेको चेतन और दूसरेको जड़ समझकर निश्चय इस प्रकार करते हैं– मैं आनन्दरूप हूँ, दूसरा दु:खरूप है। मैं चेतन हूँ दूसरा जड़ है। मैं अविनाशी हूँ, दूसरा विनाशी है।

इस प्रकार वेदान्ती लोग संसारको हेय समझकर छोड़ देते हैं।

परंतु, बलिदान एक विलक्षण वस्तु है। वही संसार जिसको हेय समझा जाता है, वामन भगवान् उसे माँगनेके लिए उपस्थित हुए।

ऊर्ध्वं प्राणं उन्नयति
अपानं प्रत्यगच्छति।।
मध्ये वामनमासीनं
विश्वेदेवा उपासते।।

नन्हा–मुन्ना वामन भगवान् हमारे शरीरके भीतर रहता है। देखो, कहाँ रहती है यह साँस ? ऊपरको निकलती है और फिर भीतर जाती है। अपानवायु नीचेसे निकलती है और प्राणवायु बाहरसे भीतर आती है और भीतरसे बाहर जाती है। बीचमें एक ऐसी नन्हीं–सी जगह है, जहाँ नीचेवाली वायु और ऊपरवाली वायु दोनों एकमें नहीं मिलती। यदि दोनों एकमें मिल जायँ, तो आदमी मर जाये, जिन्दा नहीं रह सकता।

यह साँस भीतर जाये और निकलकर बाहर न आवे और प्राणवायुके साथ अपानवायु मिल जाये, तो मृत्यु हो जायेगी। दोनोंके बीचमें वामन भगवान् नन्हे–से बनकर रहते हैं। वही प्राण और अपान वायुको अलग–अलग रखते हैं, जिससे मनुष्यकी मृत्यु न हो जाये।

ध्यान करना हो, तो साँसको भीतर ले जाओ, जहाँ जाकर साँस नीचेको नहीं जाती है। वहाँ नन्हें–मुन्ने वामन भगवान् देखो, चमचम चमकते हुए। स्वर्णवर्ण, साँवरे नहीं। बिलकुल सोनेकी तरह चमकते हुए। वही नन्हें–मुन्ने ब्रह्मचारीजी बलिके यज्ञमें आये और जब बलिने बहुत कहा तब दान माँग लिया।

पहले तो भगवान् कहते थे कि नहीं चाहिए; एक बात, जब माँगा भी तब केवल तीन पाद ! आप चार पादका वर्णन सुनते होंगे। यह माण्डूक्य उपनिषद् जो सुनते होंगे– उन्हें मालूम होगा– विश्व, तैजस्, प्राज्ञ और तुरीय। तुरीय पाद तो स्वयं परमात्मा ही हैं। विश्व, तैजस् और प्राज्ञ– ये ही तीन पाद संसार है। तीन पादमें सम्पूर्ण विश्वसृष्टि है, सम्पूर्ण प्रपञ्च है। जाग्रत्–स्वप्न–सुषुप्ति; विश्व–तैजस्–प्राज्ञ; विराट्– हिरण्यगर्भ– ईश्वर, ब्रह्मा–विष्णु–महेश; सत्त्व, रज, तम–ये सब इन तीनके अन्तर्गत आते हैं।

भगवान्ने कहा– 'हमको सिर्फ तीन पाद चाहिए।' चौथा पाद हमको चाहिए ही नहीं, क्योंकि वह तो मैं हूँ ! चौथा पाद कोई माँगे– अपनेसे या किसी दूसरेसे माँगे कि 'मैं अपने आपको माँग रहा हूँ, तो क्या माँगेगा ? उन्होंने तीन पाद माँगा, विश्व, तैजस् और प्राज्ञ।

भगवान् बोले– 'बलि ! ये तीन चीज तुम अपने पास मत रखो ! विश्व–तैजस–प्राज्ञ, ये तीन पाद धरती

हमको चाहिए, जहाँ हम बैठ सकें। वैष्णव लोग तो –**'पादोऽस्या विश्वभूतानि त्रिपादस्य मृतंगभिः।'** इस श्रुतिकी प्रधानतासे अपनी व्याख्या करते हैं कि यह एक पाद जो है वह तो विश्व है और त्रिपाद जो है वह तो दिव्यलोकमें अमृत है, सच्चिदानन्द है। त्रिपाद सच्चिदानन्द है और एक पादमें नामरूप है। यह वैष्णवोंकी व्याख्या है।

अद्वैत वेदान्तियोंकी व्याख्या ऐसे है कि त्रिपाद तो संसार है और एक पाद नित्य–शुद्ध–बुद्ध–मुक्त परब्रह्म परमात्मा है। यह दोनों ओरसे निरूपण करनेकी शैली है।

अब महाराज बलिने दान कर दिया– तीन पादका संकल्प किया। तीन–पादमें–से दो पाद तो भगवान्ने देखते–देखते नाप लिया। जो प्रत्यक्ष था सो भी नाप लिया और जो परोक्ष था सो भी। प्रत्यक्ष–परोक्ष दोनोंमें ही समूची सृष्टि आ गयी और तीसरे पादके लिए जो तीसरी चीज थी, वह देनेका समार्थ्य बलिमें न था; क्योंकि उसमें कर्तृ–कर्म–विरोध उपस्थित होता था। प्राज्ञके बाद अहन्ता नहीं रहती है। अहन्ताकी चरमसीमा प्राज्ञ है और उसको हाथमें स्वयं संकल्पकुश लेकर कहे कि मैंने 'मैं' को दिया, तो देनेवाला कौन और दिया जानेवाला कौन ? यह बात बन नहीं सकती। जैसे कोई खुद कहे कि हम अपने कन्धेपर उलटकर बैठ जायँ। इसको कर्तृ–कर्म–विरोध बोलते हैं। चढ़नेवाले तुम और चढ़े जानेवाले भी तुम ! आदमी कैसे अपने कन्धेपर चढ़कर स्वयं कन्धेपर बैठ सकता है ?

इसी प्रकार अपने आत्माका दान कोई कर नहीं सकता। दो पाद तो बलिने दिया ठीक–ठीक और भगवान्ने नाप लिया ठीक–ठीक ! परन्तु तीसरा पाद– अहन्ताकी चरम–सीमा जो व्यष्टि रूपसे 'प्राज्ञ' बोला जाता है और समष्टिरूपसे परमात्मा बोला जाता है, इस वस्तुको परमात्माके प्रति समर्पित करना बलिसे नहीं बन पाया।

नाऽयं आत्मा प्रवचनेन लभ्यः
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैश्य वृणुते तेन लभ्यः।
तस्यै स आत्मा विवृणुते तनुस्वाम्।।

परमात्माने स्वयं ग्रहण किया। कैसे ग्रहण किया ? बलिने कहा, 'महाराज! अब तीसरा पाँव देनेके लिए हमारे पास कोई दूसरी चीज नहीं रह गयी है। एक चीज रह गयी है ! क्या ?

पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम्।

आप अपना तीसरा पग मेरे सिरपर रख दीजिये। तो देखो, अब यहाँ विषयोंके विनाशी, दुःखरूप और जड़रूप बतानेकी जरूरत नहीं है। यह हेय है, त्याज्य है, गन्दा है, हड्डी–मांस–चामका पुतला है, यह बतानेकी जरूरत नहीं। यहाँ क्या हुआ ? यहाँ तो भगवान् वामनने बलिके सिरपर अपना पाँव रख दिया। वह कितना मधुर, कितना मीठा हुआ ! जो हमारा प्यारा है, जो हमारा प्रभु है, जिसकी यह समूची सृष्टि है, उसको हमारा यह छोटा मैं 'मैं–मैं' करता हुआ बैठा हुआ है, इस छोटे मैंपर भगवान् अपना पाद रख दें। आप एकबार अपनी आँख बन्द करके देखिये, 'भगवान् हमारे सिरपर अपना चरण रख करके, अपना मान करके, इस देहको, इन्द्रियोंको, सूक्ष्म शरीरको, कारण शरीरको, विश्वको, तैजस्को, प्राज्ञको आत्मसात् करते जा रहे हैं। अब यह न तो मेरा है, न तो यह मैं हूँ। यह जो बलिदान है, माने,

नाऽहं न मे इत्यपरिशेषम्।

प्रकृतिके साथ होता है– यह न तो मैं हूँ, न मेरा है। वह थोड़ा सूखा–सूखा होता है, क्योंकि प्रकृतिके प्रति अर्पण किया जाता है। यह देह प्रकृतिका, यह मन प्रकृतिका, यह बुद्धि प्रकृतिकी, अहंकार प्रकृतिका; असलमें प्रकृति कौन होती है लेनेवाली ? और वह कौन–सी ऐसी पूजनीय–वन्दनीय है, जिसके प्रति अर्पण किया जाये

? असलमें प्रकृतिसे उपहित चेतनको ही अर्पण किया जाता है। प्रकृति न तो समर्पण है, न समर्प्य।

प्रकृतिसे उपहित परमात्मा ही समर्पण योग्य है। केवल विद्या भी अविद्याको निवृत्त नहीं करती। विद्यामें आरूढ़ चेतन–विद्या–वृत्त्यारूढ चेतन ही असलमें अविद्याको दूर करता है। अविद्या क्या होती है ?

अविद्याके कारण चेतनमें दोषका अध्यारोप हो गया था। विद्यामें वृत्त्यारूढ़ चेतनका पृथक्त्व ही जान लिया जाता है। इस तरह बलिदानका अर्थ क्या होता है ?

बड़ा मीठा–मीठा बलिदान होता है जिसमें मायाकी निवृत्ति, अविद्याकी निवृत्ति, प्रकृतिकी निवृत्ति, विद्या–अविद्याकी निवृत्ति हो जाती है। एक चतुर्थ पादरूप–तुरीयरूप जो परमात्मा है, प्रत्यक् चैतन्याभिन्न–अपने आत्मासे अभिन्न साक्षात् ब्रह्म, उसके लिए त्रिपादका जो अर्पण होता है, उसका नाम है बलिदान।

असलमें, ठीक–ठीक समझमें आजाये कि यह बलिदान क्या है, तो आत्मज्ञान अपनी मुट्ठीमें है। जो सर्वस्व त्याग नहीं करेगा, वह बलिदान नहीं करेगा– यह **'सर्वमेध याग'** होता है।

यजुर्वेदके ३२वें अध्यायमें इस **'सर्वमेध याग'**का बड़ा सुन्दर वर्णन है। यह सम्पूर्ण सृष्टि परमात्मासे एक है, अभिन्न है। जो बलिदान नहीं करेगा, उसको धरतीका राज्य भी नहीं मिलेगा, स्वर्गके राज्यकी तो बात ही क्या ? जो बलिदान नहीं करेगा, उसको स्वर्गका राज्य नहीं मिलेगा। जो बलिदान नहीं करेगा, उसको समाधि नहीं लगेगी। जो बलिदान नहीं करेगा, उस पर ईश्वर प्रसन्न होकर उसे अपना नहीं बनावेगा। जो बलिदान नहीं करेगा, उसे आत्मज्ञान नहीं होगा।

इसलिए धरतीके राज्यसे ले करके शत्रुके आक्रमणसे राष्ट्रको मुक्त करना हो, दुर्भावनायुक्त लोगोंसे, दुर्वृत्त लोगोंसे संसारको मुक्त करना हो, तो बलिदानके लिए सन्नद्ध होना चाहिए। अपने स्वरूपका ही नाम परमपद–ब्रह्म है, किसी दूसरेका नाम ब्रह्म नहीं है। यदि अपने स्वरूपमें ही स्थिति– जो पहलेसे ही मौजूद है, अविद्याको दूर करके आत्मज्ञानके द्वारा यदि प्राप्त करना होवे, तो यह 'बलिदान' शब्द याद रखने योग्य है।

यह कुम्हड़ेका, कुष्माण्डका, बकरेका या घोड़ेका बलिदान नहीं है। 'मैं और मेरा' को पूर्ण रूपसे भगवान्‌के प्रति अर्पित कर देनेका ही नाम बलिदान है और यह भगवान् प्रत्यक् चैतन्याभिन्न ब्रह्मस्वरूप ही है। इसलिए सम्पूर्ण विश्वको प्रत्यक्चैतन्याभिन्न रूपमें अनुभव करना ही बलिदान है।

''''''''''''''''''''''''''''''''''''''

'मा विद्विषावहै'।

अपने मन में किसी के प्रति जलन न हो। किसी का धन देखकर, तन देखकर, मन देखकर अपने मनमें जलन नहीं होनी चाहिये। **'मा विद्विषावहै'**– न हमारे मनमें जलन हो, न तुम्हारे मनमें जलन हो। अर्थात् किसी के मनमें जलन नहीं होनी चाहिये। तब वेदान्त समझने की योग्यता आती है। आदमी से जलन, सम्पदा से जलन, कर्म से जलन, भाव से जलन कि इसके मनमें ऐसा भाव है। नारायण, स्थिति से जलन, शकल–सूरत से जलन, रंग–रूपसे जलन। जलन के तो हजार जरिये हैं। हजारों चीज ऐसी हैं, जो हमारे दिल में जलन पैदा कर सकती हैं। उनको रोकना अपना काम है। वे दुनिया में न रहें या वे ऐसा नहीं बोलें तब हमको जलन नहीं होगी, ये ऐसा नहीं करेंगे तब जलन नहीं होगी, मर जायेंगे तब जलन नहीं होगी– ऐसे नहीं। हमारे दिल में जलन न हो– यह साधक का काम है। दुनियामें जलानेवाले जलते रहें, चाहे ठंडे रहें; हमारा दिल ठंडा होना चाहिए।

अन्तःशीतलतावान् तु लब्धायां शीतलं जगत्।

अगर आपके दिलमें ठण्डक आ गयी तो सारी दुनिया ठण्डी है।

तो वेदान्त की पहली शर्त यह है कि दुनियामें जो होता है, उसको होने दो। जो कोई कुछ कहता है, उसको कहने दो। दुनिया का होना रोक देने की ताकत हमारे हाथ में नहीं है और लोगों की जीभ पकड़ लेने की ताकत भी हमारे हाथ में नहीं है। हमें अपना दिल पकड़ना है। यही आध्यात्मिक जीवन है। बाहर को ठीक कर लेंगे, तब हम ठीक हो जायेंगे– इसीका नाम संसारीपना है। और, अपने को ठीक करके हम ठीक हो जायेंगे– इसीका नाम आध्यात्मिक जीवन है। 'आध्यात्मिक– जीवन' माने अपने शरीरके भीतरका जीवन, अपने मनके भीतरका जीवन। उसको जो ठीक करना चाहता है, वह तो ठीक है, साधक है; वह भगवान् का भक्त है, वह कर्मयोगी है, वह जिज्ञासु है। और, जो बाहरका ठीक करनेमें लगा है, वह संसारी है। उसको कोई ऐसा अणुबंब बनाना चाहिये कि उसको छोड़ देने पर दुनिया ठीक हो जाये। कोई आणविक–शक्ति उत्पन्न करनी चाहिए कि उसको प्रयोग करनेसे दुनिया ठीक हो जाए। आध्यात्मिक–साधनामें उसके लिए स्थान नहीं है।

एक महात्मा थे। श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज उनका नाम था। हमसे दस–पाँच बरस उनकी उम्र ज्यादा रही होगी। एक बार वे लखनऊ गए। कोई नुक्ताचीनी करनेवाले सज्जन आए और उनके पास बैठकर बताने लगे कि तुम्हारे अंदर यह दोष है, यह दोष है, यह दोष है। वे सुनते रहे, घंटे–डेढ़ घंटे तक बड़ी दिलचस्पी से सुनते रहे। थोड़ा उसकी ओर लटक गए, कान उसके पास कर लिया। बाद में बोले कि तुमने जो गलतियाँ बताईं, वे तो हम पहले से जानते थे कि हमारे अन्दर ये गलतियाँ हैं। हम सोचते थे कि तुम कोई ऐसी नयी गलती बताओगे, जो हमारे अन्दर है तो सही, पर मालूम नहीं है। उसीको जानने के लिए हम सुन रहे थे। अरे भाई, और कोई हो तो वह भी बता दो। हम उसको दूर करनेकी कोशिश करेंगे।

तो जो हमारी गलती बताता है वह हमारा दुश्मन नहीं है, वह तो हमारा दोस्त है।

निन्दक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय।
बिनु पानी बिनु साबुने, निर्मल करे सुभाय।।

नारायण, यह जो हम दूसरे को सुधारना चाहते हैं, यह तो लेबोरेटरी का काम है, आणविक–शक्तिका काम है। और, जो हम अपने को सुधारना चाहते हैं, वह अपना काम है, माने साधक का काम है। संसारी दूसरेको सुधारकर सुखी होना चाहता है और साधक अपनेको सुधारकर सुखी होना चाहता है।

'मा विद्विषावहै'।

तो हमारे दिलमें किसी वस्तुके लिए, किसी व्यक्तिके लिए, किसी कर्मके लिए, किसी भाव के लिए, किसी अवस्थाके लिए द्वेष न हो। उसके कारण हमारे मनमें जलन न हो !